भगवत कृपा
THE DIVINE GRACE

महाप्रभु स्वामिनारायण प्रणीत सनातन, सचेतन और सक्रिय गुणातीतज्ञान का अनुशीलन करने वाली मासिक सत्संगपत्रिका

वर्ष-14, अंक-5-6 रविवार, 26 मई' 91	सम्पादक : साधु मुकुंदजीवनदास गुरु ज्ञानजीवनदासजी मई, 1991	वार्षिक चन्दा-10.00 प्रति अंक : 1.00

हाँजी.....भला......साधु..... .....गुरुहरि योगीजी महाराज

हम कहाँ नेता हैं?

हम तो सेवक हैं।

हमारी बड़प्पन तो बर्तन साफ करें ऐसी छोटी प्रकार की सेवा करने में है।

व

मुझे छोटे से छोटे सत्संगी का भी अभाव किसी दिन आता नहीं।

वह दिखाई ही नहीं पड़ता,

दिखाई भी नहीं देने देता मैं।

सबको ब्रह्म की मूर्ति देखता हूँ,

मायिकभाव आता नहीं,

चैतन्यमूर्ति मानता हूँ।

यह परावाणी ब्रह्मस्वरूप योगीजी महाराज की है.....स्वयं अक्षरधाम के अधिपति होते हुए भी उनके यह शब्द—दास का भी दास बनकर जीने की उनकी तमन्ना का सहज परिचय देते हैं...गुरुहरि शास्त्रीजी महाराज कहते थे कि **'इस योगी की जोड़ तो अक्षरधाम में भी नहीं है।' कैसा अजोड़ साधु होगा वह?** ऐसे गुरुहरि योगीजी महाराज (बापा) का शताब्दी महोत्सव मनाने की मंगल घड़ी नजदीक आ रही है। तो आईये, उनके जीवन को निहार कर सर्वस्व का समर्पण करने तत्पर बनें और प्रत्यक्ष स्वरूपों के साथ संबंध दृढ़ करके प्रसन्नता लूटकर 'योगी' के सच्चे मानस पुत्र बनें....

अपनी निर्मल साधुता और पवित्र जीवन के वर्तन से ही वे सबके हृदय में बैठ जाते थे। निःस्वार्थ प्रेम व निर्दोष वात्सल्य से ही उन्होंने अनेकों को जीता। जाने-अनजाने किसी ने भी बापा के हाथ का 'धब्बा' खाया होगा, वह आज भी उस ममत्व भरे स्पर्श को भूला नहीं पाया होगा। बापा ने युवक समाज में क्रान्ति ला दी। गलत राह पर जाते हुए अपने ही स्वभावों में—वृत्तियों में खोये हुए चंचल युवा लड़कों को अत्यधिक प्रेम में डुबोकर भक्ति मार्ग पर अग्रसर किये।

गुरुहरि योगीजी महाराज ने स्वयं के शरीर के खून की एक-एक बूंद को श्री अक्षरपुरुषोत्तम महाराज, स्वामिश्री शास्त्रीजी महाराज और सब संतों हरिभक्तों की सेवा में निचोड़ दिया और ऐसी गुरुभक्ति अदा की जिससे गुणातीत समाज के हरेक श्रेयार्थी को पथप्रदर्शन व सच्ची सूझ मिलती रहेगी।

1965 की साल में गुरुहरि शास्त्रीजी महाराज का शताब्दी महोत्सव मनाने के लिये गांव-गांव में दिन-रात विचरण कर रहे थे....अरे ! 50 पैसे की सेवा देने वाले के लिये 70 साल की आयु में चार-चार मंजिल चढ़ जाते.....खूब कड़कड़ाती सर्दी पड़ रही थी। उन्हें ठंड भी लग गई थी। ठीक से सांस भी नहीं ले पा रहे थे। बापा से बोला भी नहीं जा रहा था। हमारी आंख में पानी आ जाये इतनी अधिक तबियत खराब थी। प.पू. स्वामिश्री (पू. हरिप्रसादस्वामिजी) ने बापा को प्रार्थना करते हुए कहा 'आप अभी थोड़ा आराम कर लो, तबियत में थोड़ा सुधार हो जाये, फिर विचरण चालू करेंगे।' यह सुनते ही बापा एकदम कड़े होकर बोले : **'अभी तुम में से कोई मुझे आराम करने की बात करना नहीं। शास्त्रीजी महाराज के लिए तो यह देह कुर्बान है और इस शरीर के खून की एक-एक बूंद का उपयोग शास्त्रीजी महाराज की सेवा के लिये करना है।'**

गुरुहरि योगीजी महाराज का स्वयं का तो कुछ अधूरा था ही नहीं, अपने गुरु शास्त्रीजी महाराज की प्रसन्नता तो उन्हें सहज उपलब्ध थी ही, तब भी हम जैसे सेवकों को सच्ची गुरुभक्ति व पराभक्ति सिखाने के लिये उन्होंने इस रीत से वर्षों तक अनहद् कष्ट स्वयं की देह पर झेला।

सच में गुरुहरि योगीजी महाराज का जीवन हमारी कल्पना से परे का था। एक बार वे रोटी सेंक रहे थे.....इतने में एक कुत्ता आकर एक रोटी लेकर भागने लगा....तो बापा उसके पीछे आवाज लगाने लगे, **अरे गुरु ! रुको रोटी पर घी लगाना बाकी है**.....हममें से कोई होवे तो कुत्ते को मारने दौड़े। इसके बजाय कल्पना से परे का यह कैसा वात्सल्यभाव ! हम सब विचार करें कि कुत्ते के प्रति उन्हें ऐसी ममता थी तो हम सब के प्रति तो कितना प्रेम हृदय से बहता ही रहता होगा?

हम सब तो स्वयं को गुरुहरि योगीजी महाराज का जितना भी ऋणी मानें, वह कम है; क्योंकि उन्होंने ही हमें प्रभुस्वरूप प.पू. काकाजी, प.पू. पप्पाजी, प.पू. हरिप्रसादस्वामिजी, प.पू. अक्षर विहारीस्वामिजी, पू. साहेब जैसे पारसरूपी अनुपम हीरों की भेंट बक्शिश में दी...पारस से पारस करने वाले संत शिरोमणि गुरुहरि योगीजी महाराज को हमारे करोड़ों वंदन....उनके वारिसदारों के साथ जितनी वफादारी से हम जीयेंगे, उतनी ही बापा की प्रसन्नता अपने आप मिलती जायेगी.....उनके लाडले मानस पुत्र प.पू. काकाजी का भी प्रागट्य दिन आ रहा है....ऐसे गुरु और उनकी विरासत झेलने वाले अनोखे शिष्य की जयंती मनाकर स्वयं को धन्य करें।

*   *   *   *

आध्यात्मिक क्रांति के युगपुरुष व निर्दोषबुद्धि के सम्राट के प्रति.........

12 जून.....आध्यात्मिक क्रांति के युगपुरुष, निर्दोषबुद्धि के सम्राट का प्रागट्य दिन....अक्षर पुरुषोत्तम की–प्रगट की–दृढ निष्ठा कराने वाले व प्रत्यक्ष स्वरूप को पहचान कर उसके अभिप्राय में खो जाने की राह दिखाने वाले 'स्वरूपनिष्ठ सेवक' का प्रागट्य दिन.....

सही दृष्टि से देखा जाये तो प.पू. काकाजी सिर्फ परमार्थ हेतु जीवन जीने, जीव पर अपनी केवल अनहद् करुणा बरसा देने ही धरती पर आए...जीव कर-कर के साधन करेगा भी क्या? मोमबत्ती का सूर्य के विशाल प्रकाश के आगे अस्तित्व भी क्या? ऐसे युगपुरुष अपने साथ एक निश्चित योजना लेकर आते हैं। भगवान राम, भगवान कृष्ण ने धरती पर आकर आसुरी तत्व का संहार किया व भगवान और भक्त के संबंध की नींव दृढ़ कराने हनुमान, अर्जुन, राधा जैसे भक्तों को साथ लाकर अपनी पहचान भी स्वयं कराई.....प्रभु रखे ऐसे भगवत्स्वरूप संतों के जीवन की गहनता को निहारना खूब कठिन होता है, क्योंकि वे सामान्य मानव कक्षा की मर्यादा में रहकर ही वर्तन करते हैं। फिर भी भगवान भक्त के वश हैं, सो कोई जीव सुरुचि रखकर उनके स्वरूप की जैसी है वैसी पहचान करने अपना सर्वस्व समर्पित करने तत्पर होता है, तो वे करुणा करके उनके सच्चे संत का संबंध देकर उन्हें पहचानने की दृष्टि जीव को बक्शिश में दे देते हैं।

गुणातीत पुरुषों सतत् ऐसा ही जीवन जीते हैं जिससे सेवकों को पल-पल, प्रसंग-प्रसंग पर गुणातीत समझदारी की प्रेरणा मिलती ही रहे।

प.पू. काकाजी को गुरुहरि योगीजी महाराज का यथार्थ स्वरूप दर्शन–तत्त्व से था। उनकी हर बात क्रान्तिकारी थी। अक्षरधाम में जो महाराज हैं वही आज धरती पर साक्षात् योगीजी महाराज के रूप में प्रगट हैं। मन, कर्म, वचन से उनकी सेवा कर लें तो आत्यंतिक कल्याण हो जाएगा। इस बात का डंके की चोट पर उन्होंने ऐसा बिगुल बजाया जिसके फलस्वरूप गुणातीत समाज का सर्जन हुआ। पू. काकाजी ने निरन्तर माहात्म्य गाकर गुरुहरि योगीजी महाराज का ऐसा स्वरूप दर्शन कराया कि हरेक की योगीजी महाराज को निहारने की दृष्टि बदल गई....पू. साहेब ने गुणातीत दीक्षा दिन पर पू. काकाजी के बारे में कहा : **'बापा के लिए फना-कुर्बान हो जाने की भावना सर्वप्रथम प.पू. काकाजी ने सब में प्रज्जवलित की। प.पू. काकाजी के समागम से ही भयंकर भूचाल जैसे प्रसंगों में भी हम अडिग रह पाए.....उन्होंने ही जीवन में सुहृद्भाव दृढ़ कराया।'**

बापा की जो भी आज्ञा या अनुवृत्ति दिखाई पड़ी वहाँ काल, कर्म, माया के सामने वे निरन्तर लड़े....प्रकृति के विपरीत तांडवों में भी उनका रोम-रोम निष्काम भक्ति के सुख व आनन्द से सतत् भरा ही रहा......वे पूर्ण रूप से मानते थे कि सर्व कर्ता-हर्ता, नियन्ता, प्रेरक, प्रवर्तक, प्रकृति पुरुष के परे की यह दिव्य विभूति गुरुहरि योगीजी महाराज ही है। दृढ़ स्वरूपनिष्ठा के बल से प्रगट स्वरूप की अखंड लीला का दर्शन उन्हें सहज था। प्रत्यक्ष स्वरूप का जबरदस्त माहात्म्य, प्रगट की उपासना का डंका बजाना उनकी रग-रग में, खून के कण-कण में बसा हुआ था। पर तब भी अपने उपास्य परोक्ष स्वरूपों– अक्षरपुरुषोत्तम व उसकी **शुद्ध गुरुपरम्परा को उन्होंने कभी भी आँच नहीं आने दी। कई बार उनके मुख से हम सबने सुना भी था 'सर्वोपरि स्वामिनारायण' ! प्रकट की उपासना के नशे में बह कर उन्होंने 'स्वामिनारायण' कभी गौण नहीं होने दिए।** अधिकतर प्रगट के उपासक प्रगट स्वरूप को

पकड़ते हैं और मूल नींव को गौण कर देते हैं.....प.पू. काकाजी कई बार जोर देकर कहते भी थे–'**नींव के स्वरूपों–महाराज, स्वामी, शास्त्रीजी महाराज, योगीजी महाराज को छोड़कर अगर केवल प्रगट की महिमा गाओगे तो नींव निकल जाएगी।**' उन्होंने खुद के जीवन में भी महाराज, स्वामी, शास्त्रीजी महाराज और योगीजी महाराज के सिवा कुछ भी रखा ही नहीं था। अपनी अनोखी प्रतिभा से सारे ब्रह्मसमाज में धाम, धामी व मुक्त की सच्ची उपासना का शुद्ध तात्पर्य समझाया।

मैत्रीभाव, सुहृद्भाव, निर्दोषभाव यानि काकाजी....इन सब गुणों के राजा होते हुए भी कोई भी मुमुक्षु या साधक उनके पास आता तो वह उस सेवक की कक्षा पर उतर कर, उसमें रसबस होकर, उसके भीतर की वृत्तियों का जहर चूस कर उसके अन्तर में शांति कर देते–यही उनका उद्यम था। किसी के भी गुण दोष देखे बिना उसकी मदद में दौड़ जाना–उन्होंने अपनी भक्ति मानी थी। एक हरिभक्त ने उनका खूब विरोध किया....उन्हें खूब गालियाँ दी.....तब भी प.पू. काकाजी को जब पता चला कि वह बीमार है, Bombay Hospital में भर्ती है, तो यह सब नजर अन्दाज करके तुरन्त वे hospital पहुँच गए। वहाँ जाकर धून प्रार्थना करी.....कईयों ने जाने के लिए मना करी, तो एकदम बोले कि '**कुछ भी हो, बापा के संबंध वाला है न?**' सच में पू. काकाजी माहात्म्य व भक्ति का मूर्त स्वरूप थे। सही अर्थ में देखा जाए तो समुद्र मंथन से जैसे शिवजी ने स्वयं जहर पीया व देवताओं को अमृत दिया, वैसे ही प.पू. काकाजी के समग्र जीवन को निहारने पर लगता है कि उन्होंने संबध में आने वालों का जहर चूसकर उन्हें शुद्ध किए व प्रभु बक्शिश दिए। धन्य-धन्य हो नैसर्गिकी ब्राह्मीस्थिति के इस गुणातीत वारिसदार को....

प.पू. काकाजी हरेक के पास 'दास' बनकर रहे....उनको दिव्य मानकर जो सेवा हमें करनी थी उसकी बजाय उन्होंने हमारे स्वभाव प्रकृति जँचाये। निजी समाज के निजी सेवकों के ही अत्यधिक विरोध में भी उनकी सहजानंदी मस्ती कभी नहीं गई। उपेक्षा व उपेक्षारहित आत्मीयता का अविरत धोध निरन्तर बहता ही रहा.....बहता ही रहा.....

1983 में दिसंबर की सुबह कड़कड़ाती सर्दी में सुबह 4 बजे खुली जीप में पंजाब गए....अब महसूस होता है कि प्रीति तो वास्तव में उन्होंने हमसे की थी। और तब भी हम...? कैसे ऋण चुकाएंगे उस अजोड़ धीरज रखने वाले चैतन्यशिल्पी का। हमसे अत्यधिक प्रीति के कारण जड़ता छुड़वाने, हमसे केवल भजन करवा लेने प्रभु का बल लेकर भजन करने की आदत डालने ही पू. काकाजी ने हम सब के बीच से अचानक छलाँग मारी है। अब भी अगर हम उनकी करुणा नहीं समझें तो उन्हें कितना दुःख होगा? पू. काकाजी को हम जैसा कहते वे वही करते; इसलिए हमें जँचते थे। पर वे हमें जो कह गये हैं, अगर अब भी हम वह करेंगे तब ही जीवन में परिवर्तन संभव है। तो आईये, उनकी जयंती पर हम सब दिल की सच्चाई से प्रार्थना करें–हे काकाजी ! हे दिव्य माँ ! आपने तो 'माँ' की तरह हमारी परवरिश करने में कोई कसर नहीं रखी। पर हम भी सच में आपके परिश्रम को साकार करने जो आपको पसन्द हो वही करने लग जाएं। आपने जो 'शुद्ध गुरुपरम्परा' अर्थात् अक्षर पुरुषोत्तम को रखकर प्रगट की उपासना की सिद्धांतिक बातें करी हैं, आपके दिखाए उसी रास्ते पर चलकर जीवन जीए–महिमायुक्त सेवा करें, धून्य–भजन–प्रार्थना करते रह कर आपकी प्रसन्नता के पात्र बनें। आपकी खूब इच्छा थी कि हम पांच तो कम से कम मिलजुल कर रहें......ऐसा दिव्य उठाव–सर्वदेशीय एकता से मिलजुल कर हम लें–कि आपके दिल की प्रसन्नता हम पर ढल ही जाए–यही तमन्ना !

□ □ □

ब्रह्मप्रवाह

[आप सभी को ज्ञात है कि 1986 के 'भगवत्-कृपा' के जुलाई के अंक से हमने प.पू. काकाजी के पत्रों की, उनके साथ हुई बातों की, आशीर्वादों की आंशिक पंक्तियाँ 'ब्रह्मप्रवाह' के इस स्तम्भ द्वारा देनी शुरु की थी, जिससे प.पू. काकाजी की परावाणी के नायगरा धोध में स्नान करके सभी धन्य हो सकें।

समय-समय पर पू. काकाजी ने विभिन्न केन्द्रों में व मासिक पत्रिकाओं में लेखों द्वारा सेवकों पर खूब करुणा करके अद्भुत मार्गदर्शन दिया, यह भी सभी को विदित है। उन अनमोल हस्तलिखित लेखों की फाईल प.पू. पप्पाजी (प.पू. काकाजी के बड़े भाई, जिन्हें सारा गुणातीत समाज 'प.पू. पप्पाजी' के नाम से पहचानता है) से हमें प्राप्त हुई है जिसके लिए हम सदैव उनके ऋणी रहेंगे ही। प.पू. पप्पाजी के पवित्र चरणों में हमारे शत्-शत् प्रणाम....'ब्रह्मप्रवाह' के इसी स्तम्भ के अन्तर्गत अब प.पू. काकाजी के 'अमृत महोत्सव' निमित्त उनकी इस जयंती के पवित्र अवसर पर पत्रिका के इस अंक से उन लेखों का हिन्दी अनुवाद देना भी शुरु कर रहे है।

हम सब कितने भाग्यशाली हैं कि हमारे जीवनकाल में ही महाराज का शताब्दी महोत्सव (1981), गुणातीत द्विशताब्दी महोत्सव (1986), गुरुहरि योगीजी महाराज का शताब्दी महोत्सव (1992) और फिर 1993 में हमारे प्यारे प.पू. ककाजी का अमृत महोत्सव...... ! स्वामी की बातों में लिखा है–'आज तो शेरडी ना सांठा नो वचलो भाग मळयो छे' अर्थात् गन्ने का एकदम बीच का अत्यधिक रस व मिठास वाला भाग ही हमारे हिस्से में आ गया है। वास्तव में तो प.पू. काकाजी के अमृत संकल्प के कारण ही हम सब आज सुख भोग रहे हैं......

प.पू. काकाजी जैसी विभूतियों को जन्म-मरण का बन्धन होता ही नहीं। सो वह नित्य तत्त्व सनातन, हर पल अब भी प्रगट है। उनकी लेखनी, वाणी भी शाश्वत् है और उनका ज्ञान तो साकार ब्रह्म को ज्ञान था ! तो उनके इन लेखों को पढ़कर प.पू. काकाजी मेरे सामने बैठ कर मुझे ही समझा रहे हैं–यह मान कर मन, कर्म, वचन से दिल की सच्चाई से आज भी इस रास्ते चलने की सुरुचि मात्र रखेंगे, तो वह करुणामूर्ति आज भी वैसी ही सहायभूत होगी–अरे ! राजी होकर स्वयं जैसी ही प्रभु की मूर्ति की मस्ती व प्राप्ति बक्शिश दे देंगे। दूसरी ओर इन लेखों से प.पू. काकाजी की अद्भुत शूरवीरता, गुरुभक्ति अदा करने में स्वयं को मिटा देने की चाहना का तो सम्यक् दर्शन होगा ही, साथ ही यह पढ़कर हमें स्पष्ट ख्याल आएगा कि वे हमसे क्या कराना चाहते थे.....वे हमें क्या मुफ्त में दे देना चाहते थे? उनकी हमसे कैसी अद्भुत प्रीति थी.....

हे काकाजी ! अब तो आपकी करुणा को झेलने का पात्र बनें.....यही आपकी जयंती व अमृत महोत्सव के मंगलकारी अवसर पर अन्तर की प्रार्थना !!!]

□ □ □

पहचान—अफसोस—आश्वासन

अनादि काल से मानव सतत् अन्तर्नाद (अन्तर से पुकार) करता आया है कि कब प्रभु की पहचान हो। सनातन सतत् जीवन व मृत्यु के इन द्वंद्वों यही है पुरुषार्थ और प्रारब्ध। अतिशय महाभाग्य उदय होता है तब संग मिलता है-पुरुषार्थ करते हुए सत्य का मिलाप होता है।

निष्कपट अन्तराय के बिना, निर्मानी रुप से दास भाव से ही मन, प्राण और शरीर वडवानल अग्नि जैसे गुरु को सौंप देवे तब इस जीवन में ही प्रगट प्रभु की पहचान होती है। और सत्संग में टिके रहने पर, प्रत्यक्ष भगवान का सुख अनुभव कर सकते हैं। इस लोक में और परलोक में सच्चा सत्संग और सुहृदभाव अनहद् बल देता है और मूलअक्षर के संग ब्रह्मसंज्ञा को पाया हुआ जीव, कारण शरीर के भावों से पर होकर, महाप्रभु के साधर्म्यपन को देह रहते हुए ही पा सकता है।

उसके लिए उसे तो याहोम हो जाना पड़ता है। मायिक में से उसके संग अमायिक बनना पड़ता है। और निर्वासनिक होकर ऐसे गुरु का सेवन करा हो, तो ही ऐसा बल, महिमा और स्थिति को धारण कर पायेंगें। इस लोक में ऐसे गुरु का सान्निध्य-वह ही अक्षरधाम-वह ही धाम के पति और मुक्तों का मण्डल।

मुक्ति के भेद के मुताबिक हमें ढूँढ़ना कहीं नहीं है। पहचाना नहीं जाता वह ही अज्ञान है। बिना परिश्रम के कहाँ से पायेंगे? पाये तो पचेगा नहीं, दस्त हो जायेंगे। इसलिए पुरुषार्थ तो चाहिए ही-श्रेयार्थी के ढंग से- सच्चे मन से।

हमें प्रगट प्रभु मिले और जैसे थे वैसे पहचाने नहीं जा सके।

- जब तक ऐसे बल की तमन्ना आती नहीं,

-जब तक अधूरापन लगता है,

-जब तक गड़बड़ स्वरूपनिष्ठा में होती है, शंकाएँ रहती हैं, संकल्प विकल्प उठते हैं,

तब तक पू. शास्त्रीजी महाराज की सच्ची पहचान हुई नहीं मानी जायेगी।

प्रभु के पास तो सभी निगुर्ण, पर उनके बोल, अमृतवाणी हमसे झेली नहीं जा सकी। धधकते लोहे के ऊपर से वह अमृत जल छम्म होकर तुरन्त उड़ गया (अदृश्य हो गया)। 'कालु' मछली में मोती बनते हैं- ऐसी असर जीव में नहीं हुई और भगवान तो चल बसे। हमारे ही पाप के कारण—क्योंकि हम उनसे केवल धोखाधड़ी करते थे। बड़े पुरुष, नैष्ठिक ब्रह्मचारी है, (मिनीस्टर्स मानते हैं—तो उनमें कुछ होगा, यूँ केवल स्वार्थ वृत्ति से हम जुड़े और जितना स्वार्थ सिद्ध हुआ उतनी महिमा जानी। गिने चुने सत्संगियों के सिवा हमने उनकी स्वरूपनिष्ठा इंद्रियों में ही जानी, पर वह अंतःकरण में नहीं आई; तो जीव की तो बात ही क्या?

हरेक वस्तु को नापने की इंचीपट्टी होती है। हमारे आचार और वर्तन सत्संग के भीतर हमारे व्यवहार के लक्षणों से ही सबको पता चल ही जाता है। भीतर में जानते हुए, प्रभु की दृष्टि होते हुए अभागे यादवों की तरह हम से प्रभु जैसे थे वैसे पहचाने नहीं जा सके।

थोड़ा ख्याल आया। आखिर—आखिर सत्संग में पुरुषोत्तम भाव दिखाई पड़ा। मेरे ख्याल में वह आया व यूरोप जाने से पहले साधु के रूप में श्रीजी ही हैं यह योगीजी ने ज्ञानमार्ग दिखाकर सचोट

सचोट समझाया। वचनामृत अत्यंप्रकरण पहले के मुताबिक जिसकी जैसी ग्रन्थि वैसे ही प्रभु बात करते हैं, परन्तु यह रहस्य मर्म में समझाते हैं। मुझे तो बार-बार चमत्कारों, दर्शनों और स्वयं अपने मुख से भी उच्च कक्षा की बातें कहीं हैं और वे सच्ची ही हैं। वचनामृत व लक्षणों और अनुभवों से यह सिद्ध हो सकता है।

तो सभी प्रसंगों यहां कहाँ लिखने? पर इतना ही कि वे स्वयं 'श्रीजी' ही थे और मेरे अनुभव की यह बात है। क्योंकि अनेकों के अन्तर पकड़कर समर्थ को भी काबू में रखे और मूलकारण भावों को बदलकर दृष्टि से ही अवयवों बदले और स्वभाव टाले—वह 'पुरुषोत्तम' के सिवा ऐसे कलियुग में और दूसरे किसी का कार्य हो ही नहीं सकता। यह कोई कहानियाँ नहीं है। प्रत्यक्ष उदाहरण—श्रीजी के समय में लुटेरों को जैसे सत्संगी बने जानते हैं, वैसे हमारे सत्संग में अनेक उदाहरण हैं। नाम जिसे चाहिये उसे अकेले में दूँगा।

दूसरा लक्षण—काम, क्रोध, मद, मत्सर जैसे को ऋषि-मुनियों भी तप करने के वाबजूद भी नहीं जीत सके, ऐसे दोष सत्संगियों के दूर करते और संकटकाल में रक्षा करी है, वह मैंने स्वयं अनुभव किया है। इसके उपरांत उनके प्रताप से ही पू. नन्दाजी जैसे, चम्पकलाल भाई, मगनभाई, विनायक राय, आशाभाई, काशीबेन, राजकोट वाले रानीबा, जेठीबा, सोनाबा वगैरह महासमर्थ बल वाले थोड़े समय में ही बने हुए हम देख रहे हैं। ऐसे अनेक उदाहरण दिये जा सके ऐसा है।

वचनामृत लोया 3 के मुताबिक भगवान को एक लाख रुपए नगद इकट्ठा करने की शक्ति प्रभु के सिवा और किसी की नहीं हो सकती, पर उन्हें तो—मूल अक्षरगुणातीतानन्दस्वामी व श्रीजी—मिलकर 'स्वामिनारायण' का—भक्त और भगवान का अनादि आदर्श समझाना था। दूसरे भक्तों की मूर्तियाँ हो सकती हैं और अनादि की नहीं? इसीलिए ही उन्होंने मन्दिर बना कर आदर्श प्रतीक खड़े किये और हरेक को सच्ची उपासना और गुणातीत आज्ञा समझाई। पर हम पूरे पहचान नहीं पाये और पहचाने तो (उसके मुताबिक) वर्त नहीं पाये और वर्त सके तो टिक कर झेला नहीं जा सका। वर्ना वे जाते ही क्यों? आज अफसोस है।

हमने अन्धे होकर मान लिया है कि प्रभु सब करेंगे, पर पुरुषार्थ तो हमें ही करना होता है।

- ❑ एक दूसरे के अवगुणों (दोषों) को देख कर टीका चर्चाओं के सिवा क्या करते हैं?
- ❑ सिर्फ कल्याण की गरज से कितने हम सत्संग में आये थे?
- ❑ कितने जनों ये निर्मानी होकर सेवा हो पाती है?
- ❑ कितनों ने प्रभु को लाचार बनाया?
- ❑ और अभी भी पू. योगीजी को कितना बनाते हैं?

आशीर्वाद सभी को चाहिये और उसकी आज्ञा तो पालते नहीं। तो उसे रक्षा करनी हो तब भी कैसे होगी? काल, कर्म, माया से परे कैसे करेंगे? यह बनावट कब छूटेगी?

आश्वासन एक ही है कि पू. योगीजी हैं। गुरुजी तो आये नहीं, गये भी नहीं। वे तो योगीजी की पहचान करा गये। गढ़डा में बिठा गये। और सनातन भजन का अपूर्व आदर्श-भक्त व भगवान का—सौंप गये (अब) करना हमें है। योगीजी ही भगवान की पहचान करायेंगे।

- ❑ कब मन सौंपेगे?
- ❑ देहाभिमान, ममत्व और दूसरो का दोष देखना छोड़ कर सच्चे सत्संग में योगीजी के साथ कब जुड़ेंगे?

- हमारे घर-मन्दिरों और अन्तःकरणों में इस प्रगट ही अक्षरधाम की आवाज कब गूँजा करेगी?
- यह प्रकाश है, पर क्यों आँखों से पट्टी नहीं खोलते?
- बहुत ही आवाजें, दूसरों की सत्संगी बनाने की, ढोल बजा-बजाकर करने के बजाय, हमारा ही घर सब सुधारेंगे? प्रभु को तो एक सच्चा सत्संगी हो तो भी काफी है।
- इसलिए भजन करते-करते हमारे चरित्र बल से, हमारे जीवन की भावनाओं से और सच्चे गुणातीत ज्ञान से दूसरों के लिए कब उदाहरण रूप बना जायेगा?

पू. योगीजी हैं। किया जाये, इतना करें और दूसरी झंझटों को करने के बजाय हमारा ज्ञान ही यदि सच्चा होगा तो दूसरे समझ जायेंगे। और उनके (संत के) प्रति भावना होगी व स्थिति को पाने पर पचेगा। जबरदस्ती सदंतर छोड़ने जैसी है। हमारा ही पक्का क्यों न करें? पूछने आवे उसे जरूर भाव से समझायें, परन्तु उसका मोह दबाव से न रखे। पू. योगीजी की ऐसी सदैव—दिन रात—सेवा हो पाये और सत्संग कायम (हमेशा) रहे यही अभ्यर्थना।

प.पू. काकाजी महाराज
न्यू दिल्ली
अगस्त—1951

❑ ❑ ❑

व्रतोत्सवसूची

1.	दि.	9.6.91	रविवार	एकादशी, व्रत
2.	दि.	12.6.91	बुधवार	ब्रह्मस्वरूप प.पू. काकाजी महाराज की जन्मजयंती
3.	दि.	16.6.91	रविवार	ब्र.स्व.प.पू. काकाजी महाराज की जन्मजयंती बम्बई में पू. दिनकरभाई (शिकागो) की निश्रा में मनायेंगे।
4.	दि.	20.6.91	गुरुवार	नौमी, श्री स्वामिनारायण जयंती
5.	दि.	21.6.91	शुक्रवार	भगवान स्वामिनारायण का स्वधामगमन दिन
6.	दि.	22.6.91	शनिवार	भीम एकादशी, व्रत
7.	दि.	23.6.91	रविवार	ब्रह्मस्वरूप प.पू. काकाजी महाराज की जन्मजयंती दिल्ली—अशोक विहार मंदिर में पू. दिनकरभाई (शिकागो) की निश्रा में मनायेंगे
8.	दि.	8.7.91	सोमवार	योगीनी एकादशी, व्रत
9.	दि.	22.7.91	सोमवार	देवशयनी एकादशी, निर्जला व्रत, चातुर्मास प्रारम्भ

PUBLISHED BY SADHU MUKUNDJIVANDAS FOR YOGI DIVINE SOCIETY,
A 103, Ashok vihar-III, Swaminarayan Marg, Kakaji Lane,
Delhi-110 052. (India) Tel. : 7229327, 7128838
Printed at **R.P. Printers**, Shahadra, Delhi-110032